एक करुणामय स्वागत

स्वामी सिद्धानन्द

सन् १९७२ में, मैं शिकागो के निकट स्थित एक कॉलेज में प्रयोगात्मक कार्यक्रम में भारतीय दर्शनशास्त्र और रहस्यवाद पढ़ा रही थी। मुझे प्राचीन योगशास्त्रों में वर्णित, चेतना की विभिन्न अवस्थाओं की प्रत्यक्ष अनुभूति करने में रुचि होने लगी थी और मैंने तय किया कि यदि मुझे इसमें कोई सार्थक प्रगति करनी है तो मुझे एक गुरु को खोजना ही होगा। अतः, अपने बारह विद्यार्थियों के साथ, मैंने भारत की दो माह की अध्ययन-यात्रा का कार्यक्रम बना लिया। इस यात्रा में वे विद्यार्थी रहस्यवाद, ध्यान और भारत की संस्कृति के बारे में और अधिक सीखने वाले थे—और यह सम्भावना थी कि मुझे एक सद्गुरु मिल जाएँ।

मेरे एक मित्र थे जो सन् १९७० में कैलिफ़ोर्निया में बाबा जी से मिले थे। हमारी यात्रा आरम्भ होने से ठीक पहले उन्होंने मुझे सलाह दी, “स्वामी मुक्तानन्द से *ज़रूर* मिलना!” मैंने उनकी सलाह मान ली और बाबा जी के आश्रम को अपना पहला पड़ाव बनाने का निश्चय किया। मुझे बिना बताए ही मेरे इन मित्र ने बाबा जी को एक पत्र में यह लिख भेजा था कि अमरीकी विद्यार्थियों का एक समूह अपनी भारतयात्रा के दौरान उनसे मिलने आने वाला है।

२५ मार्च, १९७२ को हम हवाईअड्डे से एक सरकारी बस में बैठकर उस समय के श्रीगुरुदेव आश्रम पहुँच गए जो अब गुरुदेव सिद्धपीठ के नाम से जाना जाता है। वह बस, काम पर जाने वाले लोगों से भरी हुई थी, कुछ लोग बाज़ार में बेचने के लिए चीज़ों से भरी हुई टोकरियाँ ले जा रहे थे और कुछ के साथ तो मिमियाते हुए बड़े-बड़े बकरे थे।

मेरे विद्यार्थी और मैं बिलकुल अलग दिख रहे थे, युवापीढ़ी की तरह कपड़े पहने हुए—जगह-जगह से फटी हुई नीली जीन्स, मैले-कुचैले कपड़े, बंधेज की रंग-बिरंगी कमीज़ें—और अपना सारा सामान पीठ पर टँगे बैग में भरे हुए।

आश्रम के आँगन, गुरुचौक पहुँचने पर मैंने एक आश्चर्यजनक दृश्य देखा। बहुत-से लोग, साफ़-सुथरे, साधारण सूती वस्त्र पहने, शान्ति से आँगन में खड़े थे। उनमें से एक व्यक्ति ने हमारे पास आकर हमारा

स्वागत किया और पूछा, "क्या आप बाबा जी से मिलना चाहेंगे?" हमने उत्साहित होकर उत्तर दिया, "जी, हाँ बिलकुल!"

बाबा जी एक ऊँचे आसन पर बैठे थे और मैं देख रही थी कि हमारे नज़दीक पहुँचने पर उनका ध्यान हमारी ओर गया। जब हमारा परिचय दिया जा रहा था, तब बाबा जी हमें ऊपर से नीचे तक देख रहे थे। हमें अच्छी तरह से देखने के लिए उन्होंने अपना धूप का चश्मा भी उतार दिया। फिर उनका चेहरा एक बड़ी-सी मुस्कान से दमक उठा और वे बोले, "हाँ, मैं जानता हूँ कि तुम सब अच्छे परिवारों से हो।"

बाबा जी के शब्द सुनकर मैं ख़ुशी से भर गई। मुझे एहसास हुआ कि वे जो कह रहे हैं, उसका हमारे परिवार की पृष्ठभूमि से, कहीं अधिक गहरा अर्थ है। न जाने कैसे, पर मैंने महसूस किया कि हमारी मैली-कुचैली वेशभूषा के बावजूद बाबा जी ने हमारे हृदय को देख लिया था और जान लिया था कि हम भले लोग हैं और हमारे इरादे भी नेक हैं।

बाबा जी ने हमारे छोटे-से समूह का अपने आश्रम में बड़े प्रेम से स्वागत किया। उन्होंने हमें रहने के लिए ऊपर के बगीचे में एक बँगला दिया और हमारे लिए बिना मिर्च-मसाले का विशेष भोजन बनवाया।

अगले दिन सुबह, हमने नोटिस बोर्ड पर लगी आश्रम की दिनचर्या पढ़ी। दिन, सुबह ३.३० बजे शुरू होकर रात ९.०० बजे समाप्त होता। पूरा दिन ऐसे कार्यकलाप से भरा था जो अनिवार्य थे—नामसंकीर्तन के सत्र, ध्यान और सेवा। पूरे भारत में बाबा जी का आश्रम अपने सख़्त अनुशासन के लिए जाना जाता था। यह दिनचर्या बाबा जी ने स्वयं बनाई थी ताकि साधकों को अपनी अन्तर-आत्मा की अनुभूति करने में इससे सहायता मिले।

वह दिनचर्या देखकर मेरे विद्यार्थी तो हक्के-बक्के रह गए। उन्हें यह सब नहीं चाहिए था, अतः वहाँ से चल देने के लिए उन्होंने अपना सामान बाँधना शुरू कर दिया। मुझे लगा जैसे मैं बीच में फँस गई हूँ। मैं बाबा जी के साथ अधिक समय बिताना चाहती थी, पर समूह के प्रति अपनी ज़िम्मेदारी होने के नाते, मैं जानती थी कि अगर विद्यार्थी गए तो मुझे भी उनके साथ जाना ही पड़ेगा।

बिलकुल उसी समय हमें बाबा जी का सन्देश मिला—"तीन दिन यहाँ मेरे अतिथि बनकर रहो। तुम्हें केवल भोजन के कार्यक्रम में आना होगा।"

मेरे विद्यार्थी तो बहुत ख़ुश हो गए। यह दिनचर्या उनके लिए आसान थी। ख़ुद मैं, आश्चर्य व कृतज्ञता से भर गई कि मैं वहाँ रह सकूँगी और बाबा जी के साथ अधिक समय बिता सकूँगी। अतः हमने अपने बैग खोले और कमरे में जम गए।

बाबा जी ने एक आश्रमवासी से हमें आश्रम घुमाने के लिए कहा। फिर उन्होंने किसी अन्य व्यक्ति से कहा कि वे हमें गणेशपुरी गाँव स्थित, भगवान नित्यानन्द के मन्दिर ले जाए। मैं और मेरे विद्यार्थी, जैसा बाबा जी ने कहा था, उसी के अनुसार हर रोज़ भोजन करने अन्नपूर्णा भोजन-कक्ष जाते; वहाँ बाबा जी ने हमारे लिए एक अलग भोजन-पंक्ति की व्यवस्था कर दी थी। हम तीन दिन आश्रम में खुशी-खुशी रहे।

भारत की हमारी यात्रा समाप्त होने पर, कई विद्यार्थी सिद्धयोग पथ की सिखावनियों का अनुसरण करने लगे। मैंने संन्यास दीक्षा ग्रहण की और एक सिद्धयोग स्वामी बनकर अपना जीवन श्रीगुरु की सेवा में समर्पित कर दिया।

जब भी मैं बाबा जी के अपने उस पहले दर्शन के बारे में सोचती हूँ तो मुझे उनकी अनन्त करुणा की याद हो आती है। हमारी परिस्थितियाँ चाहे जो भी थीं, उनकी करुणा की वजह से ही हम उनकी कृपा को ग्रहण कर पाए। यह सर्वथा सुन्दर व श्रेष्ठ स्वागत था।

© २०२३ एस. वाय. डी. ए. फ़ाउन्डेशन®। सर्वाधिकार सुरक्षित।